INDIAN THINKER ISSN 2320 - 6128
Half yearly Research Journal Vol I Issue IV, Aug. 2014 To Jan. 2015

भक्ति काल की पृष्ठ भूमि- भक्ति काल का आंदोलन

श्री. नरसिंह आर्य
सिध्दार्थ पदवी महाविद्यालय,
बीदर (कर्नाटक)

16

Research Paper - Hindi

यदी विचार पूर्वक देखने पर भक्ति का महत्व प्राचीन काल से स्वीकार किया गया है और वैदिक एवं उपनिषद् साहित्य में स्पष्ट रुप से भक्ति कि महिमा का उल्लेख हुआ है । यह भक्ति काल कबसे प्रसिध्द है, हमारे हिन्दी साहित्य में १४ वी शताब्दी से १६ वी शताब्दी के मध्य भगतक का समय भक्ति काल के नाम से प्रसिध्द है और इस भक्ति काल में उच्चतम धर्म की व्यवस्था और उच्च कोटि के कवित्व का भी दर्शन होता है । भक्ति साहित्य अनेक दृष्टीयों से श्रेष्ठतम कहा जा सकता है । जैसे भाव, भाषा, काल इत्यादि इसीलिये कुछ समीक्षक इस भक्ति काल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग मानते है ।

कुछेक विचारक भारतीय भक्ति आंदोलन को पराजित मनोवृति और मनोवृति का परिणाम और मुस्लिम राज्य प्रतिष्ठा की प्रतिक्रिया मानते हुए हिन्दी साहित्य में भक्ति कालीन प्रवृत्तियों के आविभाव को राजनीतिक पराजय का परिणाम कहा है । परन्तु कई समीक्षकों ने इसे एक अविच्छिन, सांस्कृतिक, धार्मिक व सामाजिक भावना का परिणाम मानते हुए भारतीय इतिहास में महा आंदोलन माना है । वास्तव में किसी भी काल के साहित्य निर्माण में तत्कालीन,सामाजिक, धार्मिक, राजनितिक परिस्थितियाँ ही सहायक होती है । अत: निस्संदेह भक्ति काल की आरंभ में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी थी । जिससे ्रभावित होकर काव्य क्षेत्र परिवर्तित हो गया । अत: हम यहाँ भक्तिकालीन काव्यधारा की सामान्य पृष्ठ भूमि पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे ।

कहते है देशवासियों पर विधर्मियों का अत्याचार बढने लगा तब धीरे धीरे वीरगाथाकालिन

भावना लुप्तप्राय होने लगी । परिणामत: कवियों ने अब राज दरबार से हठकर साधुओं की कुटियों में आश्रय ले लिया और हमारे बहुत अधिक कवि आश्रय दाताओं की गुणगान करना छोड भगवान का कीर्तिगान करने एम संलग्न हो गये । इस में यह स्पष्ट करना भी ठीक है कि वीरकाव्य की भावना पूर्तत: समाप्त नही हुई । क्यों कि कोई भी प्रवृत्ति पूर्णत: नष्ठ नही हो पाती, केवल उसका रुप मंद या तीव्र होता है । इसीलिये समय से पुन: भारत की आध्यात्मिक कविता की धारा जो दब गई थी वह अनुकूल वातावरण से उभर उठी । भक्ति इसी प्रबल धारा से आश्चर्य चकित हो ग्रियर्सन ने लिखा था-हम अपने को ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं जो उस आन्दोलन से अधिक व्यापक और विशाल है, जिसे भारत वर्ष ने कभी देखा है । इस युग में धर्म ज्ञान का ही नही बल्कि भावावेश का विषय हो गया था । बिजलि की चमक के समान समस्त प्राचीन धार्मिक मों के अन्धार से उपर एक नवीन बात दिखाई दी । कोई भी हिन्दू यह नहीं जानता कि यह बात कहाँ से आई ।

ग्रियर्सन ने भक्ति की इस नवीन धारा को ईसाईयत की देन माना था । किन्तु भक्ति भावना का मुल स्त्रोत भारत को ही मानना चाहिए । अनेक भारतीय विद्वानों नें भक्ति का संबंध शताब्दि यों से अविचिन्न रुप से देश में विद्यमान थी ऐसा परम्परा से सिध्द कर दिया है ।

भक्ति काल की प्रेरणा कैसे मिली ? कुछ विचारक के कथनानुसार मुसलमानों का अत्याचार हिंन्दुओं पर बढने लगा ऐसे समय में निराश हिन्दु लोगों ने दीन रक्षक भगवान से प्रार्थना की तभ भक्ति काव्य की भावना विकसित हो गई !

दक्षिण भारत में भक्ति भावना पनप रही थी । इसी प्रकार उत्तर भारत में भी जनता विष्णु के अवतारों में विश्वास कर रही थी । वही समस्त मतावलंबी थी । भगवान अवतार धारण करता है विंय कि साधुओं की रक्षा करता है और दुष्टों का दमन करता है ।

इससे अतिरिक्त कई विचार भक्ति का उद्‌भव राजनीतिक अत्याचारों के कारण न हो स्वाभाविक रुप से ही भक्ति काल में भक्ति धारा प्रवाहित हो रही थी । डा.रागेय राघव अपने शब्दो में कहते हैं, भक्ति का आन्दोलन उस समय भी निम्न जातियों और ब्राम्हण और उच्च जातियों में भक्ति का प्रवार बहता गया, समस्त भक्ति सम्प्रदाय उच्चवर्गों के अधिकारों के विरुध्द था ।

इससे यह स्पष्ट हुआ भक्ति भावना नही ईसाइमत की देन है और नही राजनीतिक व

धार्मिक अत्याचार का परिणाम बल्कि विचारपूर्वक देखने से पता चलता है उसका विकास स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। क्यों कि भक्ति भावना के विकास में परिस्थितियों का प्रधान योग रहा है।

भारतीय सामाकि जगत में हिन्दू, मुस्लिम दोनो संस्कृतियों का विचारधाराओं का परस्पर संघर्ष हो चला था। हिंदु-मुसल्मानों में परस्पर घृणा का भाव बढता जा रहा था। हिन्दुओं का सामाजिक बंधन दृढ होने लगा। धार्मिकता की अपेक्षा सामाजिक संकीर्णता ही बढने लगी और कबीर आदि संतों ने इसी संकीर्णता का पूरा विरोध किया और आध्यात्मिकता का आश्रय लेकर उत्क संकीर्णता को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न किया। कबीर आदि संतों ने आत्मविश्वास की दृढता का समावेश कर रुढी परंपरा और संकुचितता को मुक्त करते हुए हीन भावनाओं को विनष्ट कर दिया। और सरोसामान्य जनता को समान रुप से रहने का दृष्टिकोन दिया। इसी लिये कबीर आदी संतो को इसका श्रेय जाता है।

इस प्रकार विशुध्द मानवता का आधार लेकर नूतन संस्कृति का उद्‌भव के जनक संतो को जाता है। और इस में अन्य सूफी सन्तो का भी योगदान हा। हिन्दू मुस्लिम संस्कृति और धार्मिक शांतता से समन्वय लोगोका प्रयत्न करने से निर्गुण उपासना की एक ऐसी पध्दती उद्‌भासित हो गई। जिन में प्राचीन व नवीन धार्मिक मतांतरों का प्रभाव था। हिन्दी साहित्य के इस जागरण काल को कबीर को अग्रदूत माना जाता है।

ऐसे समय में मूर्तिभंजक, मूर्ति पूजकों पर विजयी हो रहे थे। तब हिन्दू जाति निराकार उपासना से संतुष्ठ नही थे। जिन में पहला था कबीर के निराकार राम का और दूसरा था तुलसी के साकार राम का। दक्षिण की भक्ति भावना बहुत ही प्रभाव कुछ दर्शनिक आचार्यों के कारण हो गई। इस में शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बुकाचार्य आदी परात्मा की अलग अलग दृष्टी से व्याख्या करते रहे।

रामानुजाचार्य के इष्ट देव राम थे। इन्हों ने उत्तर भारत में काशी आदि में राम भक्ति का प्रचार किंया। चैतन्य महा प्रभु ने बंगाल में, वल्लभाचार्य ने ब्रज में कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। सूर व तुलसी ने इनके सिध्दांतों का आश्रय लिया और कृष्ण भक्ति और राम भक्ती की अक्षयधारा प्रवाहित की। डॉ. गुलाब राय ने भक्तिकालीन भक्ति काल की काव्य प्रवृत्तियों का उल्लेख इस प्रकार किया है :

१) निर्गुन पंथ कि ज्ञानाश्री शाखा - इस शाखा में हिन्दुओं ने हिन्दु मुस्लिम एकता को स्थापित पूर्ण प्रयत्न किया । परिणाम स्वरुप हिन्द व मुस्लिमक एक दूसरेके निकट आने लगे । इसकी संभावना बढ गई । मुसलमान लोग एकेश्वरवाद को मानने वाले थे । हिन्दू लोग भी बहु ईश्वरवादी नहीं थे । वे लोग भी परमात्मा को सभी देवताओं का एक ही रुप मानने लगे (एकौ शत् विप्राः बहुधा वदन्ति) हिन्दुओं का निर्गुणवाद खुदावाद के बहुत निकट था । इसी निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कबीर ही थे । कबीर के गुरु रामानंद जी थे ।

२) प्रेममार्गी शाखा :- यह काव्यधारा मुसल्लमान संतों और सुफियों की सदभावना का फल था । मुसिलमों का सुफी संप्रदाय हिंन्दू धर्मो के निकट है । सुर्फी लोग हिन्दुओं के सर्वेश्वरवाद अधिक समीप है । सुफी लोग ईश्वर को अपना प्रेम पात्र मानते है । शाखा के प्रधान जायसी थे ।

३) अभिमार्गी शाखा :- यह काव्यधारा भक्तो के अंतस्थल से प्रवाठित हुई । भगवदद् भजन में ही देश और जाति का कल्याण देखा । इसके दो उपधारायें थी । ।) कृष्ण भक्ति शाखा और ।।) राम भक्ती शाखा । सूरदास जी कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि थे और तुदसीदास जी राम भक्ति शाखा के । हिन्दू धर्म में भगवान को निर्गुण और सगुण दोनो ही रुप माना । संतोंने निर्गुण को अपनाया और भक्तों ने सगुण और निर्गुण दोनों को अपनाया ।

कपिता द्वारा तुलसी की शोभा नही बढी, प्रत्युत तुलसी के द्वारा कविता की महिमा संपन्न हुई । सूर काव्य भक्ति, कविता और संगीत की सुंदर त्रिवेणी है । कबीर, जायसी, मीरा, रसखान, हित हरिवंश, नन्ददास और जानक की कलाकृतियों पर हिन्दी साहित्य विश्व साहित्य के सम्मुख गर्व कर सकता है । भक्ति काव्य विश्वजनीन एवं शाश्वत काव्य है । इस में कविता के बहाने राधा कृष्ण का स्मरण होता रहा और साथ साथ शास्त्र कर्म के निर्वाह की भी लालसा बनी रही ।

तथापि एक बात तो निश्चित है कि आदि काल का साहित्य प्रामाणिक होने की दशा में भी भक्ति काव्य की प्रतिद्वन्दिता में खडा नहीं हो सकता ।

भाषा और काव्य रुपों की विविधता की दृष्टि से भी भक्ति काल समृध्द है । अवधी ब्रजभाषा दोनों ही भक्ति काल में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंची । वैसे आदीकाल में भाषा का संक्रमण काल ही और रिति काळ में तो ब्रजभाषा के साथ ही खिलवाड ही हुवा है ।

संगीत की संमृध्दी

भक्ति काल में संगीत की भी अपूर्व समृध्दी हुई और तत्कालीन कृतियों में काव्य और संगीत का समन्वय दृटिगोचर होता है। भक्ति काल में आत्म विश्वास तीव्र अनुभूती, सहज स्पूर्ति और अंतप्रेरणा आदी विशेषताएँ होने के कारण उस में स्वाभाविक ही संगीत का सन्निवेश हो सका है। वैसे संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश में भी गीतों का प्रचलन था। पर हिन्दी के सर्व प्रथम भक्ति काल में ही गीतों का बिजारोपन हुवा और रीति काल में वह पुन: रिक्त होता गया

भारतीय संस्कृति का चित्रण

संदेह नही की भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, सभ्यता, आचार, व्यवहार यह सभी कुछ भक्ति काल में सदृढ और सुंदर कलीवार में सुरक्षित हैं।

वस्तुत: भक्तिकाव्य मर्त्य और अमर्त्य काल एक अनूठा समन्वय है। इसी लिये कहा जाता है की भक्तिकाल निस्संदेह हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है।